सच मेरे यार हैं

हिन्दी ADDA

अनुराग शर्मा

सच मेरे यार हैं

1."टिकिट, टिकिट, टिकिट... और कोई बगैर टिकिट... जल्दी-जल्दी करो... चेकिंग स्टाफ चढ़ेगा आगे से... बे कोई रियायत ना करै हैं... हाँ भाई... दिल्ली वाले... अरे जे गठरी किसकी है? इसका टिकिट लगेगा..."

कंडक्टर ने शोर मचा-मचा कर नाक में दम कर दिया था। तीन घंटे भी किसी सवारी को चैन से बैठने नहीं दिया बस में। तुम सुनती तो कहती कि मैंने जरूर उठकर उसको

एक थप्पड़ जड़ा होगा। यही तो, मैंने कुछ नहीं किया। बहुत बदल गया हूँ मैं। वैसे भी जब तुम्हारे बारे में सोच रहा होता हूँ, तब मेरे आसपास का कुछ भी मुझे बुरा नहीं लगता है। कोई सुने तो आश्चर्य करेगा दूर क्यों जाती हो, अभी की ही बात करो न! अब दिल्ली जा तो रहा हूँ संजय को मिलने और सोच रहा हूँ तुम्हारे बारे में। मुझे बिलकुल आश्चर्य नहीं होता है। जब भी दिल्ली का जिक्र आता है, मेरी आँखों के सामने बस तुम्हारा चेहरा रह जाता है। मेरे लिए दिल्ली और तुम बस एक ही हो। सारे रास्ते मेरे चेहरे पर जो मुस्कान ठहरी हुई है, वह तुम्हारे नाम की है। कौन कहता है कि एक स्त्री और पुरुष में सिर्फ विशुद्ध मैत्री नहीं रह सकती है। हम दोनों में तो हमेशा ही रही है।

कोई-कोई विद्वान कहते हैं कि दोस्ती भी दर-असल एक व्यवसाय जैसी ही होती है। जिस पक्ष को उससे लाभ मिलता है, वह उसे बढ़ाना चाहता है और जिसकी हानि हो वह उस संबंध को तोड़ना चाहता है। आखिर में वही दोस्ती टिकती है जिसमें या तो दोनों पक्षों का लाभ हो या फिर दोनों ही लाभ-हानि से ऊपर हों। क्या हमारे संबंध में ऐसा तत्व रहा है? तुम तो हमेशा ही मेरी उपेक्षा करती थी। नहीं, हमेशा नहीं। जटिल है यह रिश्ता। फिर से सोचता हूँ। तुम अक्सर मेरी उपेक्षा करती थी। लेकिन जब तुम किसी भी मुश्किल में होती थी तब तुम्हें एक ही दोस्त याद आता था, मैं। और मैं, मैं तो शुरू से ही पागल हूँ। तुम्हारी हर बात मुझे अकारण ही अच्छी लगती थी। तुम्हारा साथ, तुम्हारी मुस्कान, तुम्हारा गुस्सा, सब कुछ। तुमने कितने काम सिर्फ इसलिए किए कि मुझे सता सको। लेकिन बात कभी बन न सकी।

याद है जब तुमने अपने दिल्ली तबादले की बात पर विमर्श करने के लिए मुझे अपने दफ्तर के बाहर बुलाया था। शाम का खाना भी हमने साथ ही खाया था। बारिश की रात में हम दोनों भीगते हुए टाउन हाल तक आए थे। उस समय तक तुम काफी खुश दिखने लगी थी। टैक्सी के इंतजार में हम दोनों टाउन हाल के बाहर खुले आकाश के नीचे खड़े थे। तुम्हें घर जाने में देर हो गई थी। बात करते-करते तुम शायद मुझे चिढ़ाने के लिए वह किस्सा दसवीं बार सुनाने लगी जब बस में मिला एक अनजान खूबसूरत नौजवान तुम्हारी हाथ की रेखाएँ देखकर तुम्हारे बारे में बहुत से अच्छी-अच्छी बातें बताने लगा था। तुमने अपना हाथ मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा था, "मैंने सुना है तुम बहुत अच्छा हाथ देखते हो, जरा कुछ बताओ न!" मैं उस दिन काफी उलझन में था। जल्दी घर पहुँचना जरूरी था। मगर रात में तुम्हें अकेला छोड़कर नहीं जा सकता था। जैसी नाजुक तुम थीं, देर तक बारिश में खड़े रहने पर तुम्हारे भीग कर बीमार पड़ जाने का डर भी था। तुम्हारी बात सुनते-सुनते ही मैंने से इतना ही कहा था, "टैक्सी नहीं दिखती है तो आगे चलकर बस ही ले लेते हैं।"

और तुमने अचानक ही अपना बढ़ाया हुआ हाथ एक झटके से पीछे खींचकर गुस्से में कहा, "हाँ जा रही हूँ। और इस शहर से भी जा रही हूँ यह तबादला लेकर। यही चाहते हो न? मैं कुछ कह रही हूँ और तुम कुछ और..." और कुछ कदम आगे ही बने बस स्टॉप पर अभी रुकी बस में गंतव्य जाने बिना ही चढ़ गई थी।

एकबारगी दिल किया था कि अभी हाथ पकड़कर उतार लूँ। मगर फिर यही लगा कि तुम झगड़ा कर के भीड़ के सामने कोई दृश्य न उत्पन्न कर दो। मैं भी बहुत परिपक्व कहाँ था तब। बस के आँख से ओझल हो जाने तक वहाँ खड़ा देखता रहा। शायद बाद में भी काफी देर तक खड़ा रहा था। फिर मरे हुए कदमों से घर वापस आया तो रूममेट से पता लगा कि सीमा पर तैनात बड़े भैया का संदेशा लेकर उनके जिस दोस्त को आना था वह आकर, काफी देर तक इंतजार करके चला भी गया था।

वह दिन और आज का दिन, हम लोग फिर कभी नहीं मिले। सुना था कि तुम दिल्ली में खुश थी। कभी पीछे जाकर देखता था तो समझ नहीं पाता था कि हमारा यह रिश्ता इतना एकतरफा क्यों था। कभी सोचता था कि मुझसे झगड़ा करने के बाद तुम अपनी परेशानियाँ किसके साथ बाँटती होगी। कभी सोचता तो यह भी ध्यान आता था कि मेरी तुम्हारी दोस्ती तो बहुत पुरानी भी नहीं थी। हम सिर्फ दो साल के ही परिचित थे। जाहिर है कि मेरे बिना भी तुम्हारा संसार काफी विस्तृत रहा होगा। मुझसे पहले भी तुम्हारे मित्र रहे होंगे और मेरे बाद भी। तुम्हारा दिल्ली का पता और फोन नंबर आदि सब कुछ दोस्तों ने बातों-बातों में उपलब्ध करा दिया था। कभी दिल में आता था कि पूछूँ, आखिर इतना गुस्सा क्यों हो गई थी उस दिन मुझसे। उभयनिष्ठ संपर्कों द्वारा तुम्हारी खबर मिलती रहती थी। एक दिन सुना कि तुम्हारे माता-पिता ने अच्छा सा रिश्ता ढूँढ़कर वहीं तुम्हारी शादी भी कर दी थी और अब तुम अपनी घर गृहस्थी में मगन हो।

जैसे तुम खोई वैसे ही संजय भी जिंदगी के मेले में कहीं मेरे हाथ से छूट गया था। तुम उसे नहीं जानती इसलिए बता रहा हूँ कि वह तो मेरा तुम से भी पुराना दोस्त था। छठी कक्षा से बीएससी तक हम दोनों साथ पढ़े थे। बीएससी प्रथम वर्ष करते हुए उसे आईआईटी में प्रवेश मिल गया था और वह कानपुर चला गया था जबकि मैंने बीएससी पूरी करके तुम्हारे साथ नौकरी शुरू कर दी। ठीक है बाबा, साथ नहीं, एक ही विभाग में परंतु शहर के दूसरे सिरे पर। मेरे लिए नौकरी करना बहुत जरूरी था।

संजय दिल का बहुत साफ था। थोड़ा अंतर्मुखी था इसलिए सबको पसंद नहीं आता था, मगर था हीरा। न जाने कितनी अच्छी आदतें मैंने उससे ही सीखी हैं। मुझे अभी भी

याद है जब भारत ने अपना पहला उपग्रह अंतरिक्ष में भेजा था तो हम सब कितने नाराज थे कि एक निर्धन देश की सरकार किसानों की ओर ध्यान देने के बजाय वैज्ञानिक खेल-खेल रही है। सिर्फ संजय था जिसने गर्व से सीना फुलाकर कहा था, महान देश को महान काम भी करने होंगे, हमारे अपने उपग्रह हों तो खेती, जंगल, किसान, बाढ़, शिक्षा सभी की स्थिति सुधरेगी। इसी तरह बाद में कंप्यूटर आने पर बेरोजगारी की आशंका से डराते छात्र संघियों को उसने शांति से कहा था, "देखना, एक दिन यही कंप्यूटर हम भारतीयों को दुनिया भर में रोजगार दिलाएँगे।" स्कूल-कॉलेज में हिंसा आम थी मगर मैंने उसे कभी किसी से लड़ते हुए नहीं देखा। वह अपनी बात बड़ी शांति से कहता था। कभी-कभी नहीं भी कहता था। चुपचाप उठकर चला जाता था। विशेषकर जब यार दोस्त लड़कियों पर टीका टिप्पणी कर रहे होते थे।

पिछ्ले कई साल से हमें एक-दूसरे के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। भला हो फेसबुक तकनीक का कि मैंने उसे देखा। वैसे तो संजय सक्सेना नाम उस पीढ़ी में बहुत ही प्रचलित था मगर फिर भी फेसबुक पर उसके चित्र और व्यक्तिगत जानकारी से यह स्पष्ट था कि मेरा खोया हुआ मित्र मुझे मिल गया था। मैंने उसे संदेश भेजा, और फिर फोन पर बात भी हुई। मैंने उसके अगले जन्म दिन पर मिलने का वायदा किया। आज उसका जन्म दिन है। और मेरा भी।

मैं दुविधा में था कि तुमसे मिलूँ कि बिना मिले ही वापस चला जाऊँ। जब ऑटो रिक्शा वाले ने पूछा, "कनाट प्लेस से चलूँ कि बहादुर शाह जफर मार्ग से?" तो दिमाग में बिजली सी कौंध गई। क्या गजब का इत्तेफाक है। मुझे तो पता ही नहीं था कि तुम्हारा दफ्तर संजय के घर के रास्ते में पड़ता है। तुम हमेशा कहती थी कि आगरा चाहे किसी काम से जाओ, ताजमहल देखना भी एक जरूरी रस्म होती है। इसी तरह दिल्ली आ रहा हूँ तो तुमसे मिले बिना थोड़े ही जाऊँगा। पहले की बात और थी, अब तो तुम भी कुछ सहनशील जरूर हुई होगी। मुझे भी तुम्हारी उपेक्षा का दंश अब उतना नहीं चुभता है।

"बहादुर शाह जफर मार्ग से ही चलो। बल्कि मुझे वहीं जाना है" मैंने उल्लास से कहा।

ऑटो वाला ऊँची आवाज में बोला, "लेकिन आपने तो..."

"कोई नहीं! तुम्हारे पैसे पूरे ही मिलेंगे" मैंने उसकी बात बीच में ही काट दी।

उसने पूरा पता पूछा और मैंने अपने मन में हजारों बार दोहराया हुआ तुम्हारे दफ्तर का पता उगल दिया। एक प्रसिद्ध पत्रकार ने कहा था कि दिल्ली में एक विनम्र ऑटो

रिक्शा ड्राइवर मिलने का मतलब है कि आपके पुण्यों की गठरी काफी भारी है। वह शीशे में देखकर मुस्कराया और कुछ ही देर में ही मैं तुम्हारे दफ्तर के बाहर था।

2.अरे यह चुगलीमारखाँ यहाँ क्या कर रहा है? जब तक मैं छिपने की जगह ढूँढ़ता तब तक वह सामने ही आ गया।

"क्या हाल हैगा? यहाँ कैसे आना हुआ?"

"सुनील साहब! बस आपके दर्शन के लिए चले आए?"

"बिना मतलब कौन आता है? क्या काम पड़ गया? ...शाम को मिलता हूँ। अभी तो जरा मैं निकल रहा था, जन्नल सैक्ट्री साहब आ रहे हैं न!"

इतना कहकर उसने अपना चेतक दौड़ा दिया। मेरी जान में जान आई। अंदर जाकर चपरासी से तुम्हारी जगह पूछी और उसने जिधर इशारा किया तुम ठीक वही दिखाई दी।

ओ माय गौड! यह तुम ही हो? सेम-सेम बट सो डिफरैंट! नाभिदर्शना साड़ी, बड़े-बड़े झुमके और तुम्हारे चेहरे पर पुते मेकअप को देखकर समझ आया कि तुम्हारा जिक्र आने पर राजा मुझे दिलासा देता हुआ हमेशा यह क्यों कहता था कि शुक्र मनाओ गुरु, बच गए। अजीब सा लगा। लग रहा था जैसे कार्यालय में नहीं, किसी शादी में आई हुई हो।

मैं जड़वत खड़ा था। भावनाओं का झंझावात सा चलने लगा। एक दिल कहने लगा, "देख लिया, तसल्ली हुई, अब चुपचाप यहाँ से निकल चलो।" दूसरा मन कहता था, "बस एक बार पूछ लो, तुम्हें अपनी जिंदगी से झटककर खुश तो है न।"

मैं कुछ तय कर पाता, उससे पहले ही तुमने मुझे देख लिया। आश्चर्य और खुशी से तुम्हारा मुँह खुला का खुला रह गया। बिना बोले जिस तरह तुमने दोनों हाथों के इशारे से मुझे एक काल्पनिक रस्सी में लपेटकर अपनी ओर खीचा, वह अवर्णनीय है।

मैं मंत्रमुग्ध सा तुम्हारे सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। तुम्हारा दफ्तर काफी सुंदर था। तुम्हारी सीट के पीछे पूरी दीवार पर शीशा लगा था। यूँ ही नजर वहाँ पड़ी तो तुम्हारी पीठ दिखी। देखा कि तुम्हारे वस्त्र मेरी कल्पना से अधिक आधुनिक थे। इस नाते पीठ भी ज्यादा ही खुली थी। लगभग उसी समय तुमने मेरी आँखों में आँखें डालकर देखा

और कहा, "क्या देख रहे हो?" जैसे कोई चोरी पकड़ी गई हो, मैंने अचकचाकर कहा, "कुछ भी तो नहीं, दफ्तर शानदार है।"

"हाँ!" तुमने हँसते हुए जवाब दिया, "मैंने सोचा तुम्हें भी शीशे में अपना चेहरा देखने की आदत पड़ गई। जो भी आता है, यहाँ बैठकर शीशा देखने लग जाता है। ...और सुनाओ, सब कैसा चल रहा है? तुम तो ऐसे गायब हुए कि फिर मिले ही नहीं।"

"गायब मैं नहीं तुम हुई थी" मैंने कहना चाहा मगर शब्द गले के अंदर ही अटके रह गए, हजार कोशिश करने पर भी बाहर नहीं निकल सके।

3.हमारे संबंधों के सिरे उस रात कुछ अजीब तरह से टूटे थे। आज इतने दिन बाद एक-दूसरे से मिलकर खुश तो थे मगर यह दोनों को ही समझ नहीं आ रहा था कि बात शुरू कहाँ से की जाए। वैसे तुमने मेरे गायब होने का शिकवा कर दिया था मगर वर्षों पहले टूटे हमारे संवाद को उससे कोई सहायता नहीं मिली।

"जिनसे रोज मिलते हैं उनसे कितनी बातें होती हैं कुछ दिन न मिलो तो लगता है जैसे बात करने को कुछ बचा ही न हो" कहकर मुस्कराई थी तुम। मोतियों जैसी दंतपंक्ति आज भी वैसी ही थी। मेरे दाँत तो खराब होने लगे हैं। तुम्हारी मुस्कान के प्रत्युत्तर में खुलते मेरे मुँह को मेरे दाँतों के कारण उपजे हीनताबोध ने वापस बंद कर दिया था। सब राजा का दोष है। वही रोजाना लंच के बाद मेरे मना करते-करते जबर्दस्ती पान खिला देता है। वैसे दाँत ही अकेला कारण नहीं था। मिलने में देरी का संवाद से कोई संबंध हो सकता है, यह मैं मान ही नहीं सकता। वार्ता के लिए कोई सूत्र तो तब मिलता जब हम बात करने के लिए मानसिक रूप से तैयार होते। मानसिक तैयारी होती तो उस रात भी संवाद इस बुरी तरह टूटता नहीं शायद।

आज तुम्हारे सामने बैठकर मुझे बोध हुआ था कि मैं अब तक तुम्हें भूल क्यों नहीं पाया था। मैं अभी भी उस एक घटना का एक तार्किक स्पष्टीकरण ढूँढ़ रहा था। तुमसे केवल एक बार मिलने की इच्छा मन में कहीं गहराई तक दबी हुई थी क्योंकि मन यह समझ ही नहीं पाता था कि उस रात अकारण ही तुम मुझसे इतनी नाराज कैसे हो गई थी। मनोवैज्ञानिक शायद इसे मेरा संज्ञानात्मक मतभेद कहेंगे। नाम चाहे जो भी हो, लेकिन यह सत्य नहीं बदलेगा कि तुम्हारी याद की चील मेरे मन-मस्तिष्क के आकाश पर तब तक सदैव मंडराती रहती जब तक मुझे अपने प्रश्न का उत्तर मिल नहीं जाता।

तुम्हारे सामने बैठा मैं तुम्हारी आँखों में देखकर सोच रहा था कि क्या आज मुझे तुम्हारी याद से मुक्ति मिलेगी? या फिर आज भी तुम मुझे किसी नए सवाल में उलझाकर मेरे जीवन से पुनः अदृश्य हो जाओगी। नहीं आज मैं तब तक जमा रहूँगा जब तक कि मुझे अपने प्रश्न का तसल्लीबख्श जवाब नहीं मिल जाता है। लेकिन तब संजय के जन्मदिन का क्या? वह बेचारा तो चुपचाप अपने घर में बैठा मेरी राह देख रहा होगा। लगता है मुझे ही बात शुरू करनी पड़ेगी।

"घर में सब कैसे हैं? बाल-बच्चे..."

"ठीक ही हैं। इतने दिन बाद मिले हो, मैं कैसी हूँ यह नहीं पूछोगे क्या?"

"चलो, यही बता दो। तुम कैसी हो?"

"सिगरेट तो तुमने छोड़ दी थी। चाय मँगाती हूँ।"

"सिगरेट तो छोड़नी ही थी। तुम्हारा हुक्म जो था। वैसे भी मैं कोई धुरंधर चिलमची थोड़े ही था, बस कभी-कभार राजा जिद करता था तो पी लेता था।"

चाय आ गई थी। बातचीत का वर्षों से टूटा सिलसिला भी धीरे-धीरे पटरी पर आने लगा था। तुमने बताया कि चुगली कर कर के सुनील आजकल यूनियन का काफी बड़ा नेता बन गया है। उसकी छत्रछाया में तुम्हें कोई डर नहीं है। बात में से बात निकलती जा रही थी। तुम राजा के अतिरिक्त सभी पुराने साथियों के बारे में उत्सुकता से पूछ रही थी। राजा तुम्हें शुरू से ही नापसंद था। मजे की बात यह थी कि तुमने एक भी साथी का नाम ठीक से नहीं बोला था। सुधीर को रणधीर, नटराजन को पटवर्धन, प्रमोद को विनोद, छाया को माया... और भी न जाने क्या-क्या? याद आया कि इतने दिनों से तुम्हारे व्यवहार का यह मासूम, लुभावना बचपना भी तो मिस करता रहा था मैं। मैं सबके नाम सही करता रहा और उनके बारे में जितना जानता था वह सब बताता भी रहा।

दोस्तों के बाद बात मेरी शादी की तरफ मुड़ी तो मैंने कभी शादी न करने के अपने निर्णय के बारे में बताया। एक ठंडी साँस भरकर तुमने भी सहमति सी ही जताई।

"मेरे एजी, ओजी के बारे में तो कुछ पूछा नहीं तुमने?" तुमने इठलाकर झूठे गुस्से से कहा।

4."कौन है वह खुशनसीब?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"बदनसीब..." तुमने शरारतन मेरी बात काटते हुए कहा।

"खुशनसीब..." मैंने तुम्हारे पति का सम्मान बरकरार रखने का प्रयास किया।

"नहीं, बदनसीब! खुशनसीब तो शादी करते ही नहीं।" तुम पहले जैसी ही जिद्दी थी।

"मेरी शादी में क्यों नहीं आए थे?" तुमने शिकवा किया, "...ओह, हाँ! तुमने तो बातचीत ही बंद कर दी थी।"

मैं मुस्कराए बिना न रह सका। इतने दिन बाद फिर से तुम मुझे सताने का प्रयास कर रही थी और इस बार भी असफल रहने वाली थी। यद्यपि, इस बार कारण अलग था। मुझे पता था कि यह हमारी आखिरी मुलाकात थी। और मैं इसे सुखद और विस्मरणीय बनाकर यादों की पिटारी की तलहटी में छुपाकर सदा के लिए भूल जाना चाहता था। मैं यहाँ एक और उलझन लेने नहीं बल्कि पिछली उलझन की गिरह खोलने आया था। मुझे तुमसे और कुछ नहीं केवल मुक्ति चाहिए थी।

थोड़ा सा नाज-नखरा करने के बाद तुमने बताना शुरू किया। अपनी आदत के अनुसार बीच-बीच में बात बदलकर यहाँ-वहाँ भटकाने की कोशिश भी करती रही। लेकिन मैंने भी एक सजग नाविक की तरह तुम्हारी नाव को मँझधार में अटकने नहीं दिया। मुझसे हाथ छुड़ाकर उस रात तुम जिस बस में चढ़ी थी इतने दिनों में वह तुम्हें मुझसे बहुत दूर ले जा चुकी थी।

पता लगा कि तुम्हारे हबी (पति) एक वर्कैहौलिक (कर्मठ) हैं। बातें चलती रहीं तो यह स्पष्ट होने लगा था कि तुम्हारी दुनिया में सब कुछ उतना मनोरम नहीं था जितना कि मैं सोच रहा था। तुम्हारी सास एक रक्त-पिपासु चुड़ैल थी और तुम्हारा पति ममा'ज बॉय (माँ की उँगलियों पर नाचने वाला) था। माँ कहे तो उठना, माँ कहे तो बैठना। उसने तो यह शादी भी माँ के आदेश के पालन के लिए ही की थी। ताकि दो पुत्रों को जन्म देकर उन्हें स्वर्ग की अधिकारिणी बना सके।

"बधाई हो, अपनी तो अभी तक शादी भी नहीं हुई और आप दोहरी माँ भी बन गई।"

"ऐसी मोम की गुड़िया भी नहीं हूँ मैं कि किसी और की इच्छा पूरी करने के लिए बच्चों की लाइन लगा दूँ। शुरू में बहुत लड़ाइयाँ हुई" काले रेशमी बाल झटककर तुम ऐसे मुस्कराई जैसे काली घटा के पीछे से सूरज चमका हो।

"फिर क्या हुआ? वे मान गई क्या?"

"नहीं बुद्धू, हमने अलग घर ले लिया है। खानसामा रखना पड़ा, मगर अब रोज-रोज की चख-चख नहीं है... खाना मँगाऊँ तुम्हारे लिए? सुबह के भूखे होगे।"

"माई कलाल, मेरा मतलब है ममा'ज बॉय मान गया?" मैंने तुम्हारी मेहमानवाजी को नजरंदाज करते हुए बातचीत की नाव आगे बढ़ाई।"

"ससुर का बहुत पैसा है। कई घर पहले से हैं। इस वाले खाली घर पर कुछ लोगों की नजर थी। बिकने भी नहीं दे रहे थे। मैंने कहा, कुछ साल हम रह लेते हैं। खाली रहेगा तो कोई न कोई अंदर घुस ही जाएगा। लालची ससुर को बात पसंद आ गई। सास ने थोड़ा तमाशा किया लेकिन फिर सब ठीक हो गया।"

मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि तुम इतनी समझदार थी। लेकिन वह तुम्हारी नई जिंदगी थी, मुझसे और मेरे आदर्शों से बिल्कुल अलग। मेरी पहुँच से दूर। पहली बार मुझे लगा कि अब तुम्हें अपनी समस्याएँ सुलझाने के लिए मेरी जरूरत नहीं थी। हो सकता है पहले भी न रही हो। अनजाने ही दाया हाथ अपने बाएँ कंधे पर चला गया। तुमने मुलाकात होने पर गीला होता था, आज बिल्कुल सूखा था।

कहाँ तो बात करने के लिए कुछ भी नहीं था और अब न जाने कितनी बातें कर रही थी तुम। भले ही तुम्हें मेरे कंधे की जरूरत न रही हो मुझे सुनाने के लिए लंबी कहानी थी तुम्हारे पास। ससुराल के आरंभिक दिनों में कितना कुछ सहा था तुमने। दिग्जाम सूटिंग्स के मॉडल जैसा टाल, डार्क, धनी पर औसत शक्ल-सूरत वाला तुम्हारा पति तुम्हारे मोहिनी रूप का दुश्मन हो गया था। किसी से बात करते देख ले तो ईर्ष्या से जल जाता था। और उसके बाद कैसे-कैसे आरोप-प्रत्यारोप चलते थे। किस तरह दस-दस दिन तक अबोला रहकर धीरे-धीरे पति को काबू में किया है तुमने। कितनी बार बिना बताए घर से निकलकर तीन-तीन हफ्ते तक मायके जाकर रही हो और उसके हजार बार नाक रगड़ने पर ही वापस आई हो। क्या-क्या गांधीगिरी नहीं करनी पड़ी थी तुम्हें। एक बार दफ्तर से जल्दी घर आकर उसकी सारी किताबें रद्दी में बेच दी थी। एक बार अपना गुस्सा दिखाने के लिए रात भर जागकर तुमने शादी की अल्बम के हरेक चित्र में से अपना चेहरा काट कर निकाल दिया था।

"जो हुआ सो हुआ, अब तो सब ठीक है न?"

"पहले से काफी बेहतर है। वैसी लड़ाई नहीं होती है। मैंने तो कह रखा है कि अगर अब लड़ाई हुई तो मैं जहर खा लूँगी लेकिन उससे पहले चिट्ठी में लिख दूँगी कि ससुराल वाले दहेज माँगते हैं। सारा घर फाँसी चढ़ेगा या चक्की पीसेगा।"

तुमसे नजर बचाकर मैंने अपनी चिकोटी काटी। मुझे विश्वास नहीं आ रहा था कि यह सब बातें मैं तुम्हारे मुँह से सुन रहा था। तुम फिर से मुस्कराई थी। गुलाब की पंखुड़ियों के पीछे छिपी मोतियों की माला फिर से चमकने लगी। इस बार मैंने ध्यान से देखा, तुम्हारे साइड के दो दाँत काफी नुकीले थे और बारीक नशीले होठों पर करीने से लगी हुई लाली से मिलकर काफी डरावने से लग रहे थे। क्या समय के साथ लोग इतना बदल जाते हैं? या मैंने शुरू से ही तुम्हें पहचानने में गलती की थी? शायद इतने ध्यान से कभी देखा ही नहीं था।

"कहा था न गुरू, बच गए! अब चुपचाप निकल लो..." राजा वहाँ नहीं था, केवल मेरा भ्रम था।

"अच्छा, अब मैं चलूँ क्या?" मैंने उठने का उपक्रम किया।

"जल्दी क्या है? तुम्हारा कौन घर में इंतजार कर रहा है?" तुम व्यंग्य से हँसी।

"एक दोस्त से मिलना है। सुबह से बाट जोह रहा है।" मैंने सफाई सी दी।

"एक दोस्त! लड़का या लड़की? यहाँ हम बिना बात इतने खुश हो रहे थे। लगा मुझसे मिलने आए हो। जहाँपनाह अपने दोस्त से मिलने आए हैं। जाओ कभी बात नहीं करना अब।" तुम फिर से रूठ गई थी। लेकिन इस बार मेरे दिमाग पर कोई बोझ नहीं था।

5.घंटी बजाने से पहले दो कदम पीछे हटकर मैंने घर को अच्छी प्रकार देखा। घर बहुत सुंदर था। दरवाजा संजय ने खोला। बिल्कुल पहले जैसा ही था। कनपटी पर एकाध बाल सफेद हो गया था। चश्मा तो वह पहले भी लगाता था। चिर-परिचित निश्छल मुस्कान। देखते ही मन निर्मल और चित्त शीतल हो गया। लगा जैसे हम कभी अलग हुए ही नहीं थे। संजय फोन पर था। बात करते-करते ही उसने उत्साह से मुझे गले लगाया और फोन मुझे पकड़ा दिया।

"आशीष बेटा, कैसे हो?" आंटी की ममतामयी वाणी सुनकर तो मैं निहाल ही हो गया, "जन्म दिन की शुभकामनाएँ।"

"आपको याद है कि मेरा जन्म दिन भी आज ही होता है?" मैं भाव-विह्वल हो गया।

"तुम भी तो मेरे बेटे हो, यह भी आशीर्वाद दे रहे हैं।"

संजय के माता-पिता से बात पूरी होने पर मैंने फोन वापस किया और थैले में से मिठाई निकालकर उसे दी। हम दोनों ने एक-दूसरे को शुभकामनाएँ दीं। संजय चाय नाश्ता लेकर आया और हम लोग बातें करने लगे। घर अंदर से भी उतना ही सुंदर था जैसे कि बाहर से था। हर ओर संपन्नता और सुरुचि झलक रही थी। बैठक में लगी कलाकृतियों को ध्यान से देखने के उपक्रम में जब मैं उठा तो देखा कि मेरे ठीक पीछे की दीवार पर एक तस्वीर में संजय एक नन्हे से बच्चे को गोद में लिए था। बिल्कुल वैसी ही सूरत, शहद सी आँखें और हल्के बाल। लगता था जैसे वर्तमान की गोद में भविष्य अठखेलियाँ कर रहा हो। चित्र देखने पर संजय के बच्चे और उसकी माँ को साक्षात देखने की इच्छा ने सिर उठाया।

"आज के दिन भी अकेला बैठा है? सब कहाँ हैं?"

संजय को शुरू से ही जन्मदिन मनाने से विरक्ति सी थी। हमेशा कहता था कि जन्म लेकर हमने कौन सा तीर मार लिया है जो उसका उत्सव मनाया जाए?

"तुझे तो पता है मेरे लिए हर दिन एक सा ही होता है। तेरी भाभी तो टुन्नू को साथ लेकर मायके गई है। उनके पिताजी बीमार हैं।"

"आज के दिन तो बुला लेता, हम भी भाभी के पाँव छू लेते इसी बहाने।" मैंने शरारत से कहा तो वह भी मुस्कराया।

"अरे शाम को तो आ ही जाएगी, मगर तब तक तेरी ट्रेन छूट जाएगी।"

संजय ने स्वादिष्ट खिचड़ी बनाई, मानो हमारे पुराने दिन वापस आ गए हों। खाते-खाते हम दोनों ने अलग होने के बात से अब तक की जिंदगी के बारे में जाना। बचपन के बचपने की बातें याद कर-कर के खूब हँसे। संजय ने कुछ रसीले गीत भी सुनाए। उसे बचपन से ही गाने का शौक था। भगवान ने गला भी खूब सुरीला दिया है। काँची से लेकर सपनों की रानी तक सबसे मुलाकात हो गई। मन प्रफुल्लित हुआ। कुल मिलाकर आना सफल हो गया।

पता ही न चला कब मेरे निकलने का समय हो गया। संजय के कहने पर मैं चलने से पहले एक कप चाय पीने को तैयार हो गया। उसे याद था कि चाय के लिए मैं कभी न नहीं कहता हूँ। चाय पीकर मैंने अपना थैला उठाकर चलने का उपक्रम किया कि दरवाजे की घंटी बजी।

"लकी है, तेरी भाभी शायद जल्दी आ गई आज" संजय ने खुशी से उछलते हुए कहा। थैला कंधे पर डाले-डाले ही आगे बढ़कर मैंने दरवाजा खोल दिया।

"नमस्ते भाभी! अच्छा हुआ चलने से पहले आपके दर्शन हो गए। इजाजत दीजिए।" कहकर मैंने हाथ जोड़े और निकल पड़ा। ऑटोरिक्शा में बैठते हुए मुड़कर देखा, मुझे विदा करने के लिए अभी भी संजय और तुम दोनों देहरी पर खड़े थे।